बारहवाँ अंक जुलाई–सितंबर 2017 ISSN- 2395-2873

सहचर...

(साहित्य, सिनेमा, कला एवं अनुवाद की ई–पत्रिका)

SAHCHAR.COM

संपादक
डॉ. आलोक रंजन पांडेय

सहचर

Posted on October 25, 2017 by admin

संपादकीय – डॉ. आलोक रंजन पांडेय

बातों-बातों में

हबीब तनवीर के संदर्भ में कपिल तिवारी से ऋतु रानी की बात-चीत

शोधार्थी

पाठकों से संवाद करती स्वयंप्रकाश की कहानियाँ : डॉ.शशांक मिश्र एवं प्रो.पवन अग्रवाल

आचार्य शिवपूजन सहाय की संपादन कला : डॉ. सुनील कुमार तिवारी

कबीर के काव्य में सामाजिक चेतना – अनुराग सिंह

प्रेमचंद की कहानी कला : डॉ. साधना शर्मा

रीतिकाल के संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की साहित्येतिहास दृष्टि : अमृत कुमार

गुलज़ार की कविताओं में भारत विभाजन की त्रासदी : एक अध्ययन – सुकांत सुमन

साहित्य में स्त्री विमर्श का महत्व और रघुवीर सहाय की रचनाएँ – दिनेश कुमार यादव

सिनेमा में हिन्दी भाषा का स्वरूप – अर्चना उपाध्याय

विश्व शांति: अहिंसा और महात्मा गांधी के योगदान : डॉ. संजीव कुमार तिवारी

कविताओं से गायब होता देश का अन्नदाता – मोनिका मीना

तुलसीदास के ग्रंथों में भारतीय जनसंस्कृति का स्वरूप – कल्याण कुमार

अमृतलाल नागर और बाल साहित्य – अतुल वैभव

द्विभाषिकता एवं बहुभाषिकता: संदर्भ एवं प्रकृति – श्वेतांशु शेखर झा

चंद्रकिशोर जायसवाल : महत्व और प्रासंगिकता – राणा प्रताप यादव

अभिव्यक्ति

पंखुरी सिन्हा की पाँच कविताएँ

डॉ. सुनीता की चित्रकारी

हाँ मैं प्रसिद्ध होना चाहती हूँ" – कुमारी अर्चना

पिंजरे की चिड़िया – स्वाति कुमार

मैं रूठा हूँ – सुषमा सिंह

प्रकृति का स्पर्श – व्योमकांत मिश्र

प्रेरणा (लघुकथा) – मुकेश कुमार ऋषि वर्मा

औरत, औरत की दुश्मन (कहानी) – अमन कौशिक

जरा हट के

हिंदी का लोक व्यवहार – डॉ. ममता सिंगला

आधुनिक कविताओं में विचारों का संप्रेषण :मिथक – डॉ. मोनिका देवी

जटिल जीवन नद में तिर तिर – सच्चिदानंद पांडेय

हिंदी की दशा की पडताल – जयंत जिज्ञासु

आदिवासी कविता : संघर्ष और विद्रोहधर्मिता – डॉ.धीरेन्द्र सिंह

जन-माध्यमों के बदलते सरोकार – डॉ. माला मिश्र

जनसंचार के क्षेत्र में रेडियो का महत्व – डॉ. बलजीत कुमार श्रीवास्तव

कोर्ट मार्शल: दलित चेतना की अभिव्यक्ति – डॉ. स्नेहलता नेगी

संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी – डॉ. सुनील भूटानी

उषा प्रियंवदा का रचना संसार – डॉ. रूचिरा ढींगरा

तेलुगु लोक गीतों की परंपरा : एक अध्ययन – डॉ. आनंद एस

दिव्या माथुर की कहानियों में स्त्री मुक्ति का आह्वान – नितिन मिश्रा

मध्यकालीन संत एवं भक्त कवि और सार्वभौमिक मानव-मूल्य – सुमन

व्यक्ति के जीवन में श्रीमद्भगवद्गीता का महत्त्व – डॉ. कामराज सिंधु

स्त्री-मुक्ति की राहें : सपने और हकीकत – डॉ. रामचन्द्र पाण्डेय

'युद्ध' कहानी में अभिव्यक्त मुस्लिम मानस – शिखा

महादेवी और आधुनिक नारी की संघर्षयात्रा – डॉ.ऋचा शर्मा

वैश्वीकरण के दौर में भाषा के विभिन्न आयाम – डॉ. कमलिनी पाणिग्राही

समकालीन मीडिया में पर्यावरण, वैश्वीकरण और भाषा : एक विवेचन – अर्चना पाठक

सोलहवीं शताब्दी के स्पैनिश संत सान खुआन का रहस्यवाद – माला शिखा

तर्जुमा

बालशौरि रेड्डी के साहित्य में प्रयुक्त भाषा – डॉ. आर.सपना

समीक्षा

प्रेम संवेदना और रेणु की कहानियाँ – (डॉ. सविता कुमारी श्रीवास्तव):समीक्षक-जैनेंद्र कुमार मिश्र

सिनेमा/फैशन

फिल्म 'दंगल' के गीत : भाव और अनुभूति – डॉ.ममता धवन

अप्रवासी सिनेमाः रचनात्मक प्रयोगधर्मिता – आर. के. दूबे

Posted in अनुक्रमणिका, ग्यारहवाँ अंक

सिनेमा में हिन्दी भाषा का स्वरूप – अर्चना उपाध्याय

Posted on October 25, 2017 by admin

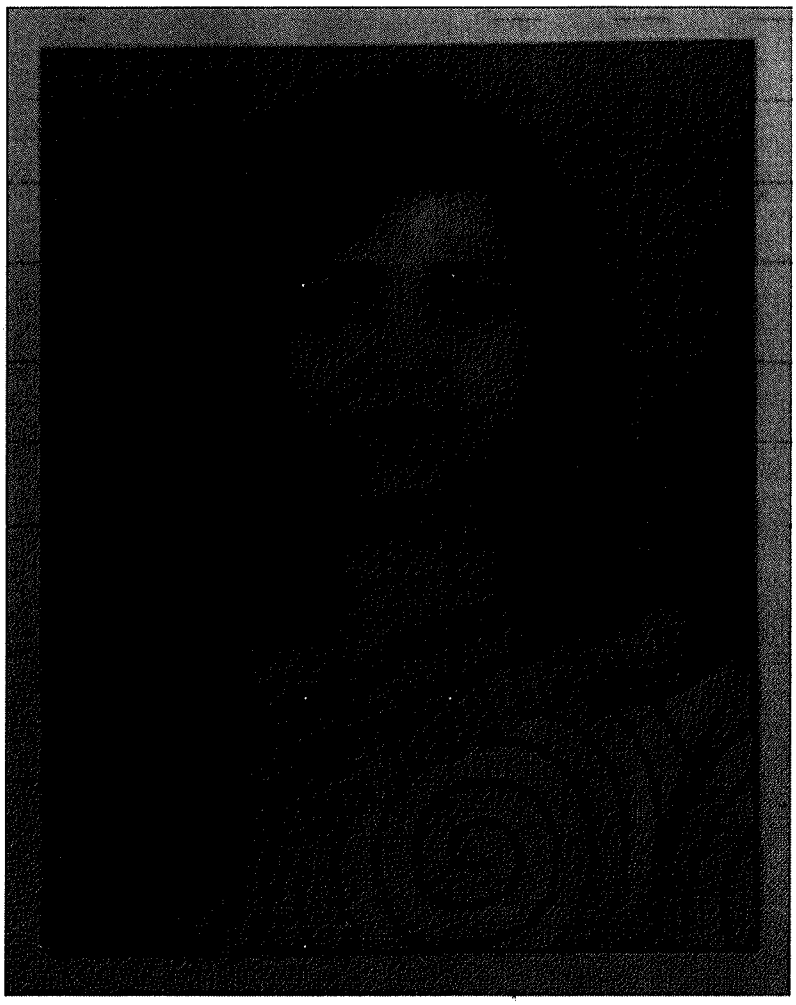

हिन्दी सिनेमा का आरम्भ पारसी थिएटर की देन है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में महाराष्ट्र और गुजरात में पारसी थिएटर का जन्म माना जाता है। इसके आरंभिक रंगकर्मियों में अधिकतर गुजराती भाषी पारसी थे, इसलिए इसे पारसी रंगमंच के नाम से जाना गया। इसमें मंचित होने वाले नाटकों की भाषा गुजराती, मराठी तथा उर्दू मिश्रित हिन्दी होती थी। पारसी थिएटर का मुख्य केन्द्र बम्बई (मुंबई) था। यूँ तो बम्बई (मुंबई) मराठी भाषी क्षेत्रा था किन्तु

नौकरी तथा व्यापार के सिलसिले में अन्य भाषा-भाषी भी आते-जाते रहते थे। व्यापारिक गतिविधियाँ में ज्यादातर गुजराती तथा मारवाड़ी व्यवसायी संलग्न थे। मिलों और कारखानों में नौकरी करने वालों में बिहार और उत्तर-प्रदेश के लोगों की बहुलता थी। धीरे-धीरे पारसी थिएटरों से विभिन्न भाषाओं के लोग जुड़ते चले गए। 'डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, "परंतु एक तथ्य तो निर्विवाद है कि बीसवीं सदी के प्रथम दशक में पारसी-रंगकर्मी जुड़ गए और उन्होंने एक मिलीजुली संस्कृति की मिलीजुली भाषा को जन्म दिया और यह भाषा इतनी लोकप्रिय रही कि गुजराती, मराठी और मारवाड़ी रंगकर्मी अपनी-अपनी भाषा छोड़कर इसमें काम करने के लिए हिन्दी भाषा सीखने को तत्पर हुए"। दूसरी ओर, उभरते औद्योगिक महानगर के रूप में गैर मराठी और गैर गुजराती लोगों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी हो रही थी। सैनिकों, नाविकों, मजदूरों के रूप में आने वाले लोगों के बीच संपर्क भाषा के रूप में जिस जबान का उपयोग होता था यह वही जबान थी जो पहले पारसी थिएटर के लोकप्रिय रंगमंच की भाषा बनी और बाद में सिनेमा की भाषा बनी। क्योंकि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में विकसित होने वाले इस रंगमंच के दर्शक यही लोग थे।'1

अपने आरंभिक दौर में पारसी थिएटर के माध्यम से पारसी की लोकप्रिय कथाओं अथवा भारतीय धार्मिक कथाओं पर आधरित नाटकों का मंचन किया गया। इसके साथ ही अंग्रेजी और संस्कृत के प्रसिद्ध नाटकों को भी गुजराती, मराठी तथा उर्दू भाषा में अनुवाद कर अभिनीत किया गया। किन्तु, इस प्रयास में उनके दर्शकों की संख्या सीमित ही रह गई। बम्बई से बाहर इन नाटकों का दर्शक-वर्ग नहीं मिल रहा था। तब इन नाटकों को हिन्दी या हिन्दुस्तानी जबान में प्रस्तुत करने की आवश्यकता महसूस की गई। गुजराती नाटककारों ने जो कि उर्दू भाषा जानते थे उन्होंने हिन्दुस्तानी (मिश्रित हिन्दी) में नाटक लिखना आरम्भ कर दिया। "जो गुजराती नाटककार गुजराती नाटक लिख रहे थे, उनमें से कई उर्दू का भी ज्ञान रखते थे। इसलिए जब इस बात की जरूरत महसूस की गई कि गुजराती और मराठी के साथ-साथ हिंदुस्तानी में भी नाटक खेले जाने चाहिए तब इन नाटकों का अनुवाद करना बहुत मुश्किल नहीं रहा। जब एक बार हिंदुस्तानी में नाटक खेले जाने लगे तो ऐसे नाटककार इन कंपनियों के साथ जुड़ने लगे जो बिना अनुवाद का सहारा लिए सीधे हिंदुस्तानी में नाटक लिख सकते थे।"2 हिंदुस्तानी जबान में नाटकों का लेखन तथा मंचन होने के बाद इसके दर्शकों की संख्या में आशातीत वृद्ध हुई। अब ये नाटक बम्बई से निकल कर पूरे उत्तर भारत में लोकप्रियता का शिखर छूने लगे। कलकत्ता में भी इसके दर्शकों की संख्या बढ़ने लगी। "सच्चाई तो यह है कि बाद में सिनेमा की भाषा को रूप देने में इन नाटककारों का बहुत बड़ा योगदान था। लेकिन यह जबान लोकप्रिय इसलिए भी हो सकी कि कलकत्ता से बंबई और सुदूर पश्चिम में पेशावर तक फैले इलाके के लोगों के लिए यह बहुत अपरिचित नहीं थी। यहाँ लोगों में हर धर्म, हर जाति और हर वर्ग का दर्शक मौजूद था। केवल शिक्षित ही नहीं अशिक्षित भी।"3 पारसी थिएटर से जुड़े हुए कई प्रख्यात नाटककार आगे चलकर फिल्मों से जुड़ गए। उनके साथ ही उनकी हिन्दुस्तानी भाषा भी फिल्मों की भाषा बन गई। "पारसी रंगमंच से जुड़े नाटककार उस दौर की कई फिल्मों के पटकथा लेखक और संवाद लेखक बने। मसलन, नारायण प्रसाद बेताब, आगा हश्र कश्मीरी, राधे श्याम कथावाचक जैसे पारसी रंगमंच के प्रख्यात नाटककार आरंभिक मूक और सवाक पिफल्मों से जुड़े रहे। इन तीनों ने कई फिल्मों की पटकथा लिखी, कई में गीत लिखे और आगा हश्र ने तो कुछ फिल्मों का निर्देशन भी किया।"4

सिनेमा के दर्शक समाज के हर वर्ग से आते हैं। शिक्षित वर्ग के साथ ही अशिक्षित या कम पढ़ा-लिखा वर्ग भी सिनेमा के दर्शक दीर्घा में बड़ी संख्या में उपस्थित होता है। कोई भी संचार माध्यम ऐसी भाषा को अपनाता है जिसे

अधिक से अधिक लोग लिखते, बोलते तथा समझते हों। इसलिए फिल्मों के निर्माता-निर्देशक समाज के हर वर्ग के व्यक्तियों के भाषा का प्रयोग अपनी फिल्म में करते हैं। जिससे फिल्म देखने वाले सभी दर्शकों को फिल्म की भाषा अपनी ही भाषा लगे। "फिल्म में हिन्दी भाषा को चुनना इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी सभी भारतीय भाषाओं में अधिक उर्जावान, सरल, सुबोध्, सुगम तथा आम जनता से बहुत शीघ्र जुड़ने वाली भाषा है। मीडिया उस भाषा को अपनाता है जो भाषा कम समय तथा कम प्रयास में अधिक जुड़ जाती है। तात्पर्य यह है कि हिन्दी भाषा में वह गुण है जो सर्वग्राह्य बनता है।"5

फिल्मकार का यह आग्रह होता है कि उसके द्वारा बनाई जा रही फिल्म की भाषा कहानी में प्रस्तुत देश, काल, चरित्रा और पात्रों के मनोविज्ञान के अनुसार हो। परिवेश और पात्रा के अनुरूप भाषा में परिवर्तन किया जाता है। 'बॉबी' फिल्म के संवाद गोवनीज़ मिश्रित हिन्दी भाषा में है। इसमें 'गोवा' शहर के परिवेश और संस्कृति को दर्शाया गया है, इस कारण यह भाषा फिल्म में स्वाभाविक लगती है। इसी तरह 'मुगल-ए-आज़म' फिल्म में उर्दू मिश्रित हिन्दी भाषा का प्रयोग किया गया है, जो कि फिल्म की पटकथा, पृष्ठभूमि तथा पात्रों के अनुरूप है। 'लगान' फिल्म की भाषा भोजपुरी और अवधी सम्मिश्रित है, जो कि फिल्म के परिवेश और चरित्रा के अनुसार न्यायसंगत प्रतीत होता है। कभी-कभी एक ही फिल्म के पात्र अपनी भूमिका के अनुसार अलग-अलग भाषा का प्रयोग करते हैं। फिल्म 'मुन्नाभाई एमबीबीएस' में अस्पताल के डॉक्टर तथा अन्य कर्मचारी, नायक, मुन्ना के माता-पिता शिष्ट भाषा का प्रयोग करते हैं जबकि मुन्ना और उसके साथी मुंबई की चॉल या झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोगों की भाषा बोलते हैं। भाषा के इस अन्तर से पात्रों के सामाजिक स्तर और मनोविज्ञान को समझाने का प्रयास किया गया है।

अनेक सफल फिल्में जैसे – 'मिस्टर एंड मिसेज अय्यर', 'झनकार बीट्स' के पात्र जिस भाषा का प्रयोग करते हैं। वह न तो शुद्ध हिन्दी है और न ही सम्पूर्ण अंग्रेजी। फिल्म में एक वाक्य हिन्दी में बोला जा रहा है तो दूसरा अंग्रेजी में, कहीं-कहीं एक ही वाक्य में हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं के शब्द बड़ी सहजता से प्रयुक्त किए गए हैं। इस मिलीजुली भाषा को चिन्हित करने के लिए एक नए शब्द 'हिंग्लिश' का आविष्कार हुआ। यह 'हिंग्लिश' भाषा मध्यवर्गीय परिवारों में, कार्यालयों तथा स्कूल-कॉलेज के विद्यार्थियों के मध्य खूब लोकप्रिय हो रही है।

"हिन्दी सिनेमा का संबंध किसी क्षेत्र विशेष से जोड़ना उचित नहीं है। इसका संबंध पूरे भारत से है। इससे भी ज्यादा सही यह कहना होगा कि इसका संबंध दक्षिण एशिया के उस हिस्से से है जिसे भारतीय उपमहाद्वीप कहते हैं।"6 ऐसे लोग जो भारत के किसी भी प्रदेश में रहते हैं साथ ही हिन्दी समझते हैं, वे हिन्दी फिल्मों से स्वयं को जुड़ा महसूस करते हैं। नेपाल, बंगला देश, पाकिस्तान, श्रीलंका आदि भारत के पड़ोसी देश तथा अमरीका, ब्रिटेन, मॉरीशस, कनाडा आदि सुदूर देशों में भी भारत के मूल निवासी बसे हुए हैं। इनकी स्वाभाविक रूचि हिन्दी फिल्मों के प्रति है। फिल्मकार इस बड़े दर्शक वर्ग को दृष्टि में रख कर फिल्म का निर्माण करता है। यही कारण है कि फिल्मों की भाषा हिन्दी होते हुए भी पूरी तरह से हिन्दी नहीं होती अपितु, इसमें अन्य भाषाओं का सम्मिश्रण होता है। "फिल्मकार यह जानते हुए भी कि वह भारतीय दर्शकों के लिए फिल्म बना रहा है उसकी कोशिश यह भी होती है कि वह इस उपमहाद्वीप में फैले या इस महाद्वीप के मूल बाशिंदों के अन्य जगहों पर रहने के यथार्थ को भी अपने मानस में रखे। यह बात सचेत रूप में रहती है या नहीं लेकिन अचेत रूप में जरूर रहती है।"7

भारत में व्यवसायिक पिफल्मों के साथ कलात्मक फिल्में भी बनती रही हैं। व्यवसायिक फिल्मों की तुलना में कलात्मक फिल्मों में हिन्दी भाषा अपेक्षाकृत अपने शुद्ध रूप में प्रयुक्त हुई है। फिल्में समाज से ही विषय तथा भाषा का

रूप लेती हैं। क्षेत्र तथा विषय की भिन्नता भाषा को भी प्रभावित करती है। कला फिल्मों में प्रायः किसी छोटे भू-भाग या ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधरित विषय को चुनते हैं। इसलिए इन फिल्मों में हिन्दी के देशज शब्दों का प्रयोग अधिक होता है।

फिल्म की भाषा को प्रभावित करने वाला एक अन्य सशक्त कारक है – व्यवसाय। फिल्मकार अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति के साथ ही यह बात भी ध्यान में रखता है कि उसकी फिल्म अच्छा व्यवसाय करे। यह तभी संभव हो सकता है जब उसकी फिल्म अधिक से अधिक दर्शकों तक पहुँचे। इसलिए भी वह भाषाई स्तर पर प्रयोग करने के लिए प्रेरित होता है। कुल मिलाकार हिन्दी फिल्मों की भाषा शुद्ध हिन्दी न होकर मिली-जुली भाषा बन चुकी है। "वैसे तो प्रत्येक कला माध्यम अपने उत्कृष्ट रूप में अपने में सार्वभौमिकता का तत्व लिए होता है। लेकिन हिन्दी सिनेमा का तो जन्म ही ऐसे माध्यम के रूप में हुआ है जो एक साथ कई भाषाई समूहों को अपने में समेटते हुए अपना अस्तित्व बनाए रख सके और अपना विकास कर सके। ऐसा होने के पीछे व्यावसायिकता एक कारण के रूप में मौजूद है लेकिन यही सिर्फ कारण नहीं है।"8

आज हिन्दी सिनेमा द्विस्तरीय संघर्ष से गुजर रहा है। एक ओर तो वह अपनी परंपरा से जुड़ा है जबकि दूसरी ओर विषय, तकनीक तथा भाषा के संदर्भ में अनेक स्तरों पर नए-नए प्रयोग कर रहा है। हिन्दी सिनेमा को अपने जन्म से ही अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। भाषा को बचाने तथा उसको बनाने का द्वन्द्व हिन्दी सिनेमा के समक्ष एक और बड़ी चुनौती है।

संदर्भ :

1. हिन्दी सिनेमा का समाजशास्त्रा, सिनेमाई भाषा की सामाजिक प्रकृति, लेखक – जवरीमल्ल पारख, प्रथम संस्करण-2006, पृष्ठ-64
2. वही, पृष्ठ-65
3. वही, पृष्ठ-65
4. वही, पृष्ठ-69
5. साहित्य और सिनेमा, संपादक- पुरूषोत्तम कुंदे, सिनेमा की भाषा : हिन्दी, लेखक – प्रा. तडवी एस. ए., प्रथम संस्करण- 2014, पृष्ठ-155-156
6. हिन्दी सिनेमा का समाजशास्त्रा, हिन्दी सिनेमा और भारतीय समाज, लेखक- जवरीमल्ल पारख, प्रथम संस्करण – 2006, पृष्ठ-89
7. वही
8. हिन्दी सिनेमा का समाजशास्त्रा, सिनेमाई भाषा की सामाजिक प्रकृति, लेखक – जवरीमल्ल पारख, प्रथम संस्करण- 2006, पृष्ठ-75

अर्चना उपाध्याय
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
श्याम लाल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

Posted in ग्यारहवाँ अंक, शोधार्थी